25

पृथ्वी सूक्त

ऋषियों के द्वारा दृष्ट शब्दों की आख्या को वेद कहते है। और वे शब्द यथैव मौखिक परम्परा से हजार वर्षों से आस्तिकों के द्वारा सुरक्षित की। क्योंकि संस्कृत साहित्य में वेदों का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में धर्म व्यवस्था वेदों के आधार पर ही है। वेदों को आधारित करके स्मृति आदि रचना की है। वेद स्वयं में ही प्रमाण है। स्मृति आदि तो वेदमूलक होने से प्रमाणरूप में स्वीकार किया। इसलिए श्रुति और स्मृति में विरोध होने पर श्रुति को ही प्रमाण माना जाता है। केवल धर्ममूलक होने से ही वेदों का आदर किया जाता है, अपितु विश्व में सबसे प्राचीनग्रन्थ होने से भी इनका आदर किया जाता है। प्राचीन धर्मसमाज-व्यवहार-आदि और वस्तुओं के उत्पन्न होने का ज्ञान वेदों के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। "विद्यन्ते धर्मादयः पुरुषार्थाः यैः ते वेदाः इति"। सायण ने तो "अपौरुषेयं वाक्यं वेद" ऐसा कहा। इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोः अलौकिकम् उपायं यो वेदयति स वेद इति। और भी कहा गया -

''प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥" इति।

वेद चार होते हैं। वे - ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। इस प्रकृतपाठ में अथर्ववेद के अन्तर्गत पृथ्वी सूक्त का वर्णन किया गया है। जैसे इन्द्रादिसूक्तों में इन्द्र आदिदेवों के विविध रूप से वर्णन किया वैसे ही पृथ्वी सूक्त में भी पृथ्वी के विविधरूप का वर्णन है। वस्तुत अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में (१२.१) ६३ मन्त्र हैं। उन मन्त्रों से बीस मन्त्र इस पाठ में दिये हैं। इस सूक्त के अथर्वा ऋषि, भूमि और पृथ्वी देवता। अथर्वा ऋषि ने पृथ्वी का विविध रूप से वर्णन किया।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंग :

- पृथ्वी सूक्त के संहितापाठ को स्वर सहित जान पाने में;
- पृथ्वी सूक्त के पदपाठ को जान पाने में;

- पृथ्वी सूक्त के मन्त्रों का अन्वय कर पाने में;
- सरलता से पृथ्वी सूक्त के अर्थ को समझ पाने में;
- पृथ्वी सूक्त के शब्दों के व्याकरण बिन्दुओं को जान पाने में;
- पृथ्वी सूक्त का विविधरूप से वर्णन कर पाने में;
- वैदिक शब्दों को जान पाने में;
- वैदिक लौकिक शब्दों का भेद समझ पाने में।

25.1 मूलपाठ

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥१॥

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः॥२॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु॥३॥

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु॥४॥

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु॥५॥

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु॥६॥

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा॥७॥

यार्णवेधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योऽमन्त् सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे॥८॥

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयोदुहामथो उक्षतु वर्चसा॥९॥

टिप्पणियाँ

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेनमित्रां शचीपतिः।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः॥१०॥

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।
अजीतोहतो अक्षतोध्यष्ठां पृथिवीमहम्॥११॥

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वऽः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु॥१२॥

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना॥१३॥

यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान् मनसा यो वधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि॥१४॥

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य
उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति॥१५॥

ता नः प्रजाः सं दुह्रतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम्॥१६॥

विश्वस्वंऽ मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा॥१७॥

महत्सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम्।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन॥१८॥

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः॥१९॥

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्व१न्तरिक्षम्।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम्॥२०॥

25.1.1 मूलपाठ की व्याख्या : श्लोक 1-10

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥१॥

पदपाठ - सत्यम्। बृहद्। ऋतम्। उग्रम्। दीक्षा। तपः। ब्रह्म। यज्ञः। पृथिवीम्। धारयन्ति॥ सा। न। भूतस्य। भव्यस्य। पत्नी। उरुम्। लोकम्। पृथिवी। नः। कृणोतु॥१॥

अन्वय - सत्यं बृहत् ऋतम् उग्रं दीक्षा तपः यज्ञः पृथ्वीं धारयन्ति। भूतस्य भव्यस्य पत्नी सा नः पृथ्वी नः लोकम् उग्रं करोतु।

सरलार्थ - महत सत्य आदि पृथ्वी को धारण करते हैं। भूत और भविष्य में आने वाले प्राणियों को यह पत्नी रूपी पृथ्वी हमारे लिए महान ऐश्वर्य धन धान्य आदि प्रदान करे।

व्याकरण

- **ऋतम्** - ऋ-धातु से क्त प्रत्यय करने पर।
- **धारयन्ति** - धृ-धातु से णिच लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **कृणोतु** - कृ-धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है।

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः॥२॥

पदपाठ - असम्ऽबाधम्। मध्यतः। मानवानाम्। यस्याः। उत्ऽवतः। प्रऽवतः। समम्। बहु॥ नानाऽवीर्याः। ओषधीः। या। बिभर्ति। पृथिवी। नः। प्रथताम्। राध्यताम्। नः॥२॥

अन्वय - यस्याः बहु उद्वतः प्रवतः समं मानवानां मध्यतः असम्बाधं याः नानावीर्याः ओषधीः बिभर्ति, पृथ्वी नः प्रथताम्, नः राध्यताम्।

सरलार्थ - जो अबद्ध मनुष्यों को भी प्रेम में बंधन करती है, जो भूमि वैचित्र्य पूर्ण है, जो अनेक शक्ति से सम्पन्न औषधि वृक्षो को धारण करती है, वह पृथ्वी हमारे समीप में विस्तृत हो, हमारे लिए वह कल्याणकारी हो।

व्याकरण

- **प्रथताम्** - प्रथ्-धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **राध्यताम्** - राध्-धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **नानावीर्याः** - नाना वीर्याणि यासां ताः इति बहुव्रीहिसमास।
- **बिभर्ति** - भृ-धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु॥३॥

पदपाठ – **यस्याम्। समुद्रः। उत। सिन्धुः। आपः। यस्याम्। अन्नम्। कृष्टयः। सम्ऽबभूवुः॥ यस्याम्। इदम्। जिन्वति। प्राणत्। एजत्। सा। नः। भूमिः। पूर्वऽपेये। दधातु॥३॥**

अन्वय – यस्यां समुद्रः सिन्धुः उत आपः, यस्याम् अन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः, यस्याम् इदं प्राणत् एजत् जिन्वति, सा भूमिः नः पूर्वपेये दधातु।

सरलार्थ – जहां समुद्र नदियाँ और सरोवर आदि हैं, जहां धन, धान्य, फसल से कृषि करने वाले मनुष्य उन्नत होते हैं, जहाँ प्राणशील और गतिशील (कम्पनशील) जीवन व्यतीत करते हैं, वह भूमि हमको प्रथम दुग्धपान के समान आनन्द में सदैव रखे।

व्याकरण

- **सम्बभूवुः** – सम्पूर्वक भू-धातु से लिट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **प्राणत्** – प्रपूर्वक अन्-धातु से शतृप्रत्यय करने पर।
- **एजत्** – एज्-धातु से शतुप्रत्यय करने पर।
- **जिन्वति** – जिन्द्-धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **दधातु** – धा-धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में।

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु॥४॥

पदपाठ – **यस्याः। चतस्रः। प्रऽदिशः। पृथिव्याः। यस्याम्। अन्नम्। कृष्टयः। सम्ऽबभूवुः॥ या। बिभर्ति। बहुऽधा। प्राणत्। एजत्। सा। नः। भूमिः। गोषु। अपि। अन्ने। दधातु॥४॥**

अन्वय – यस्याः पृथिव्याः चतस्रः प्रदिशः, यस्याम् अन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः, या प्राणत् एजत् बहुधा बिभर्ति, मा भूमिः नः गोषु अपि अन्नेषु दधातु।

सरलार्थ – जिस पृथ्वी की चार दिशा है, जिस पृथ्वी पर धान्य आदि शस्य (फसल) और मनुष्य उत्पन्न होते है, जो पृथ्वी प्राण शीलों को और गतिशीलों को (कम्पशील को) विविध प्रकार से धारण करती है, वह पृथ्वी हमे गाय आदि पशुधन में और अन्न आदि में रखे।

व्याकरण

- **कृष्टयः** – कृष्-धातु से भाव में क्तिन्प्रत्यय करने पर प्रथमाबहुवचन का रूप बनता है।
- **संबभूवुः** – सम्पूर्वक भू-धातु से लिट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु॥५॥

पदपाठ - यस्याम्। पूर्वे। पूर्वऽजनाः। विचक्रिरे। यस्याम्। देवाः। असुरान्। अभिऽअवर्तयन्। गवाम्। अश्वानाम्। वयसः। च। विऽस्था। भगम्। वर्चः। पृथिवी। नः। दधातु॥५॥

अन्वय - यस्यां पूर्वे पूर्वजनाः विचक्रिरे यस्यां देवाः असुरान् अभ्यवर्तयन्। पृथ्वी गवाम् अश्वानां वयसः च विष्ठा, न भगं वर्चः दधातु।

सरलार्थ - जिस पृथ्वी पर पूर्वजों ने अनेक कर्म किये, जिस पृथ्वी पर देवों ने असुरों को पराजित किया, जिस पृथ्वी ने गाय आदि को अनेक प्रकार का आश्रय स्थान दिया, वह पृथ्वी हमारे लिए ऐश्वर्य और तेज दे।

व्याकरण

- **विचक्रिरे** - विपूर्वक कृ-धातु से लिट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **अभ्यवर्तयन्** - अभिपूर्वक वृ-धातु से णिच लङ प्रथमपुरुष बहुवचन में।
- **विष्ठा** - विपूर्वक स्था-धातु से कप्रत्यय करने पर।

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु॥६॥

पदपाठ - विश्वम्ऽभरा। वसुऽधानी। प्रतिऽस्था। हिरण्यऽवक्षा। जगतः। निवेशनी॥ वैश्वानरम्। बिभ्रती। भूमिः। अग्निम्। इन्द्रंऽऋषभा। द्रविणे। नः। दधातु॥६॥

अन्वय - विश्वंभरा, वसुधानी, प्रतिष्ठा, हिरण्यवक्षा, जगतः निवेशनी, इन्द्रऋषभा भूमिः वैश्वानरम् अग्नि बिभ्रती नः द्रविणे दधातु।

सरलार्थ - विश्व का भरणपोषण करने वाली, धन को धारण करने वाली, सभी को आश्रयस्थान देने वाली, हृदय में सुवर्ण को धारण करने वाली, मनुष्य आदि का निवासस्थान अथवा जगत में उत्पन्न प्राणियों का शैथिल्य प्रदान करने वाली, इन्द्र के द्वारा रक्षित पृथ्वी वैश्वानर को धारण करती है वह हमें धन प्रदान करे।

व्याकरण

- **विश्वम्भरा** - विश्व का जो भरण - पोषण करती है वह विश्वम्भरा।
- **वसुधानी** - वसु उपपद धा-धातु से ल्युट् ङीप करने पर।
- **हिरण्यवक्षा** - हिरण्यं वक्षे यस्याः सा इति बहुव्रीहि समास।
- **निवेशनी** - नि उपपद विश्-धातु से ल्युट ङीप करने पर।
- **विभ्रती** - विपूर्वकभृ-धातु से शतृप्रत्यय और ङीप करने पर।
- **इन्द्रऋषभा** - इन्द्रः ऋषभः यस्याः सा इति बहुव्रीहि समास।

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा॥७॥

पदपाठ - याम्। रक्षन्ति। अस्वप्नाः। विश्वऽदानीम्। देवाः। भूमिम्। पृथिवीम्। अप्रऽमादम्॥ सा। नः। मधु। प्रियम्। दुहाम्। अथो इति। उक्षतु। वर्चसा॥७॥

अन्वय - यां पृथ्वी भूमिम् अस्वप्नाः देवाः विश्वदानीम् अप्रमादं रक्षन्ति सा (पृथ्वी) नः प्रियं मधु दुहाम् अथो वर्चसा उक्षतु।

सरलार्थ - निद्रा से रहित देव और प्रमादरहितसन्त जिस विस्तृत पृथ्वी की रक्षा करते है वह ही पृथ्वी मधुर सुंदर धान्य और तेज प्रदान करे।

व्याकरण

- **रक्षन्ति** - रक्ष्-धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **विश्वदानीम्** - विश्व उपपद धा-धातु से ल्युट् और ङीप् करने पर।
- **दुहाम्** - आत्मनेपद दुह्-धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **उक्षतु** - उक्ष्-धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में।

यार्णवेधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योऽमन्त् सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे॥८॥

पदपाठ - या। अर्णवे। अधि। सलिलम्। अग्रे। आसीत्। याम्। मायाभिः। अनुऽअचरन्। मनीषिणः॥ यस्याः। हृदयम्। परमे। विऽओमन्। सत्येन। आऽवृतम्। अमृतम्। पृथिव्याः॥ सा। नः। भूमिः। त्विषिम्। बलम्। राष्ट्रे। दधातु। उत्ऽउत्तमे॥८॥

अन्वय - या अग्रे अर्णवे सलिलम् अधि आसीत् यां मनीषिणः मायाभिः अन्वचरन्, यस्याः पृथिव्याः सत्येन आवृतम्, अमृतं हृदयं परमे व्योमन् सा भूमिः न बलं उत्तमे राष्ट्रे दधातु।

सरलार्थ - जो पृथ्वी प्रारम्भ में समुद्र के मध्य में स्थित थी, मनस्वियों को जो बुद्धि से प्राप्त होती है, जिस पृथ्वी के अमृतहृदय को सत्य से ढका हुआ है वह पृथ्वी हमारे उत्तमराष्ट्र में समृद्धि प्रदान करे अथवा वह भूमि हमारे लिए उत्तमराष्ट्र के लिए तेज और शक्ति को प्रदान करे।

व्याकरण

- **अन्वचरन्** - अनु उपपदचर्-धातु से लङ प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **व्योमन्** - व्योम्नि इसका यह वैदिक रूप है।

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयोदुहामथो उक्षतु वर्चसा॥९॥

पदपाठ - यस्याम्। आपः। परिऽचराः। समानीः। अहोरात्रे इति। अप्रऽमादम्। क्षरन्ति। सा। नः। भूमिः। भूरिऽधारा। पयः। दुहाम्। अथो इति। उक्षतु। वर्चसा ॥९॥

अन्वय - यस्यां परिचरा आपः समानी अहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति। भूरिधारा सा भूमिः नः पयः दुहाम् अथो वर्चसा उक्षतु।

सरलार्थ - जिस पृथ्वी के चारो दिशाओं में जल विचरण करता है, दिन और रात निर्विघ्न रूप से चलते रहते हैं। इस प्रकार अनेक धारा से सम्पन्न पृथ्वी हमारे लिए दुग्ध (जल) प्रदान करे अथवा वह पृथ्वी हमारे लिए अनेक दुग्ध धारा से और तेज से अभिषेक करे।

व्याकरण

- **अहोरात्रे** - अहश्च रात्रिश्च इति द्वन्द्वसमास का द्विवचनान्त रूप है।
- **क्षरन्ति** - क्षर् इस अर्थ से लट् प्रथमपुरुष एकवचन का रूप है।
- **दुहाम्** - दुह्-धातु से लोट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन में वैदिक रूप है।

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेनमित्रां शचीपतिः।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः॥१०॥

पदपाठ - याम्। अश्विनौ। अमिमाताम्। विष्णुः। यस्याम्। विऽचक्रमे। इन्द्रः। याम्। चक्रे। आत्मने। अनमित्राम्। शचीऽपतिः। सा। नः। भूमिः। वि। सृजताम्। माता। पुत्राय। मे। पयः॥१०॥

अन्वय - याम् अश्विनौ अभिमाताम्, यस्यां विष्णुः विचक्रमे, यां शचीपतिः इन्द्र आत्मने अनमित्रां चक्रे, नः सा पृथ्वी माता ते पुत्राय पयः विसृजताम्।

सरलार्थ - जिस पृथ्वी पर अश्विन कुमारों ने भ्रमण किया, जिसको विष्णु ने अपने पद चरणों से सुशोभित किया, जिसे शचीपति इन्द्र ने अपने लिए अशत्रू रहित बनाया, वह ही हमारी पृथ्वी माता हमारे लिए दुग्ध आदि धान्य प्रदान करे।

व्याकरण

- **अभिमाताम्** - अभि उपसर्ग मा-धातु से लङ् प्रथम पुरुष द्विवचन में।
- **विचक्रमे** - वि उपसर्ग क्रम्-धातु से लिट् प्रथम पुरुष एकवचन में।
- **चक्रे** - आत्मनेपद कृ-धातु से लिट् प्रथम पुरुष एकवचन में।
- **वि सृजताम्** - वि उपसर्ग सृज्-धातु से लोट् प्रथम पुरुष एकवचन में।

पाठगत प्रश्न 25.1

1. पृथ्वी सूक्त के ऋषि और देवता कौन है?
2. कौन पृथ्वी को धारण करते है?
3. पृथ्वी किनको धारण करती है?
4. ऋतम् यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
5. पृथ्वी की कितनी दिशा है?
6. जिन्वति यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
7. किस प्रकार की पृथ्वी ऐश्वर्य और तेज प्रदान करती है?
8. विश्वंभरा इस शब्द का क्या अर्थ है?
9. वसुधानी शब्द का क्या अर्थ है?
10. हिरण्यवक्षा इसका विग्रह और समास लिखो।
11. इन्द्रऋषभा इसका विग्रह और समास लिखो
12. अस्वप्नाः इसका क्या अर्थ है?
13. दुहाम् यह रूप किस लकार में है?
14. उक्षतु यह रूप कैसे सिद्ध होता है?
15. शचीपति कौन है?

25.1.2 मूलपाठ की व्याख्या : श्लोक 11-20

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।
अजीतोहतो अक्षतोध्यष्ठां पृथिवीमहम्॥११॥

पदपाठ – **गिरयः। ते। पर्वताः। हिमऽवन्तः। अरण्यम्। ते। पृथिवि। स्योनम्। अस्तु। बभ्रुम्। कृष्णाम्। रोहिणीम्। विश्वऽरूपाम्। ध्रुवाम्। भूमिम्। पृथिवीम्। इन्द्रऽगुप्ताम् अजीतः। अहतः। अक्षतः। अधि। अस्थाम्। पृथिवीम्। अहम्॥११॥**

अन्वय – पृथिवि ते गिरयः हिमवन्तः पर्वताः ते अरण्यं स्योनम् अस्तु। बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां इन्द्रगुप्तां भूमिं पृथिवीम् अहम् अजीतः अहतः अधि अस्थाम।

सरलार्थ – हे पृथ्वी तेरे पर्वत, हिमालय, और गिरी आदि कल्याणकारी हो, और तेरे वन कल्याणकारी हों। बभ्रु आदिरूप विशिष्ट स्थिर इन्द्र के द्वारा रक्षित अत्यन्त विस्तृत पृथ्वी अपराजय हिंसा रहित और विनाशरहित होकर रहें।

व्याकरण

- **अजीतः** – जि–धातु से क्तप्रत्यय करने पर जीतः यह रूप बना। वहाँ "न जीतः अजीतः" इति नञ्तत्पुरुषसमास।
- **अहतः** – हन्–धातु से क्तप्रत्यय करने पर हतः रूप बना। "न हतः अहतः" इति नञ्तत्पुरुषसमास।
- **अक्षतः** – क्षत्–धातु से क्तप्रत्यय करने पर क्षतः यह रूप बना। न क्षतः अक्षतः इति नञ्तत्पुरुषसमास।
- अधि अस्थाम् – अधि उपसर्ग स्था धातु से लङ उत्तमपुरुष एकवचन में।

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वऽः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु॥१२॥

पदपाठ – यत्। ते। मध्यम्। पृथिवि। यत्। च। नभ्यम्। याः। ते। उर्जः। तन्वऽः। सम्ऽबभूवुः॥ तासु। नः। धेहि। अभि। नः। पवस्व। माता। भूमिः॥ पुत्रः। अहम्। पृथिव्याः॥ पर्जन्यः। पिता। सः। ॐ इति। नः। पिपर्तु॥१२॥

अन्वय – पृथिवि यत्, ते मध्यं, यत् नभ्यं च, या ते तन्वः ऊर्जः संबभूवुः तासु नः धेहि, नः अभि पवस्व, भूमिः माता, अहं पृथिव्याः पुत्रः, पर्जन्यः पिता। सः नः पिपर्तु।

सरलार्थ – हे पृथ्वी तेरा जो मध्यभाग है, जो नाभिक्षेत्र, और जो तेरे शरीर से उत्पन्न रस उन सभी में हमे प्रदान करो। हमको पवित्र करो। भूमि माता है, मैं इसका पुत्र हूँ, पर्जन्य पिता है, वह हमारा पालनपोषण करे।

व्याकरण

- **धेहि** – धा–धातु से लोट् मध्यमपुरुष एकवचन में।
- **पवस्व** – पू–धातु से लोट् मध्यमपुरुष एकवचन में।
- **पिपर्तु** – पृ–धातु से प्रथमपुरुष एकवचन में।

यस्यां वेदिं परिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः।
यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामूर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात्।
सा नो भूमिर्वर्धयद् वर्धमाना॥१३॥

पदपाठ – यस्याम्। वेदिम्। परिऽगृह्णन्ति। भूम्याम्। यस्याम्। यज्ञम्। तन्वते। विश्वऽकर्माणः॥ यस्याम् मीयन्ते। स्वरवः। पृथिव्याम्। ऊर्ध्वाः। शुक्राः। आऽहुत्याः। पुरस्तात्॥ सा। नः। भूमिः। वर्धयत्। वर्धमाना॥१३॥

अन्वय - यस्यां भूम्यां वेदिं परिगृह्णन्ति, विश्वकर्माणः यस्यां यज्ञं तन्वते, यस्यां पृथिव्याम् आहुत्याः पुरस्तात् ऊर्ध्वाः शुक्राः स्वरवः मीयन्ते, सा भूमिः वर्धमाना नः वर्धयत्।

सरलार्थ - जिस पृथ्वी पर देव वेदि निर्माण करते है, जिससे यज्ञ को सम्पादन करते है, और जिस आहुतिदान करने से पूर्व प्रकाशमान यज्ञीय यूप गाड़े जाते हैं, वह भूमिवृद्धि को प्राप्त होती हुई हमे बढ़ाये।

व्याकरण

- **परिगृह्णन्ति** - परि उपसर्ग ग्रह्-धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **तन्वते** - आत्मनेपद तन्-धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **मीयन्ते** - आत्मनेपद मा-धातु से लट् प्रथमपुरुषबहुवचन में।
- **वर्धयत्** - वृध्-धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **वर्धमाना** - वृध्-धातु से शानच और टापकरने पर प्रथमा एकवचन में।

यो नो द्वेषत्पृथिवि यः पृतन्याद्योऽभिदासान् मनसा यो वधेन।
तं नो भूमे रन्धय पूर्वकृत्वरि॥१४॥

पदपाठ - यः। नः। द्वेषत्। पृथिवि। यः। अभिऽदासात्। मनसा। यः। वधेन। तम्। नः। भूमे। रन्धय। पूर्वऽकृत्वरि॥१४॥

अन्वय - (हे) पृथिवि यः नः द्वेषत् यः पृतन्यात् यः मनसा यः वधेन अभिदासात् (हे) भूमे (हे) पूर्वकृत्वरि, तं नः रन्धय।

सरलार्थः - हे पृथ्वी जो हमसे द्वेष करते है, जो युद्ध करते है, जो मन से तथा शस्त्र से दमन करते है, हे श्रेष्ठों के लिए काम करने वाली तुम उनका नाश करो।

व्याकरण

- **द्वेषत्** - द्विष्-धातु से लोट्-लकार प्रथमपुरुष एकवचन में रूप है।
- **पृतन्यात्** - पृतन्य इस नाम धातु से लेट्-लकार का प्रथमपुरुषएकवचन का रूप है।
- **अभिदासात्** - अभि इस उपपदपूर्वक दस्-धातु से लेट्-लकार का प्रथमपुरुष एकवचन का रूप है।
- **रन्धय** - रन्ध-धातु से णिजन्त लोट्-लकार का रूप है।

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।
तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य
उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति॥१५॥

पदपाठ – **त्वत्। जाताः। त्वयि। चरन्ति। मर्त्याः। त्वम्। बिभर्षि। द्विऽपदः। त्वम्। चतुःऽपदः॥ तव। इमे। पृथिवि। पञ्च। मानवाः। येभ्यः। ज्योतिः। अमृतम्। मर्त्येभ्यः॥ उत्ऽयन्। सूर्यः। रश्मिऽभिः। आऽतनोति॥१५॥**

अन्वय – त्वत् जाता मर्त्याः त्वयि चरन्ति, त्वं द्विपदः त्वं चतुष्पदः बिभर्षि। पृथिवि इमे मानवाः येभ्यः मर्त्येभ्यः उद्यन् सूर्यः रश्मिभिः अमृतम् आतनोति।

सरलार्थ –आप से उत्पन्न हुए प्राणी आप में ही विचरण करते हैं, तुम दो पैर वालों को धारण करने वाली और चार पैर वालों को धारण करती हो। हे पृथ्वी सभी मनुष्य तेरे है, जिनके लिए उदय होता हुआ सूर्य अपनी किरण से अमृततुल्य प्रकाश को फैलाता है।

व्याकरण

- **बिभर्षि** – भृ–धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **आतनोति** – आङ्पूर्वकतन्–धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।

ता नः प्रजाः सं दुहतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम्॥१६॥

पदपाठ – **ताः। नः। प्रऽजाः। सम्। दुहताम्। सम्ऽअग्राः। वाचः। मधु। पृथिवि। धेहि। मह्यम्॥१६॥**

अन्वय – ताः समग्राः प्रजाः नः सं दुहताम्। (हे) पृथिवि मह्यं वाचः मधु धेहि।

सरलार्थ – वे सभी प्राणी हमारे लिए अच्छे प्रकार से सुख देने वाले हों। हे पृथ्वी हमारी वाणी में मधुरता प्रदान कीजिए।

व्याकरण

- **दुहताम्** – दुह्–धातु से लोट्–लकार का यह रूप है।
- **धेहि** – धा–धातु से लोट्–लकार का यह रूप है।

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्।
शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा॥१७॥

पदपाठ – **विश्वऽस्वम्। मातरम्। ओषधीनाम्। ध्रुवाम्। भूमिम्। पृथिवीम्। धर्मणा। धृताम्। शिवाम्। स्योनाम्। अनु। चरेम। विश्वहा॥१७॥**

अन्वय – विश्वस्वम् ओषधीनां मातरं ध्रुवां, पृथिवीं धर्मणा धृतां भूमिं (वयं) विश्वहा अनु चरेम।

टिप्पणियाँ

सरलार्थ – सभी को उत्पन्न करने वाली, औषधियों की माता, दृढता से और प्रशस्त रूप से धर्म से सभी को धारण किया, कल्याणकारी और सुख प्रदान करने वाली पृथ्वी के ऊपर हम हमेशा विचरण करते रहे।

व्याकरण

- **विश्वसम्** – विश्वस् इस प्रातिपदिक का द्वितीया एकवचन का रूप है।
- **अनुचरेम** – अनु इस उपसर्गपूर्वक चर्-धातु से लोट्-लकारउत्तमपुरुषबहुवचन का रूप है।

महत्सधस्थं महती बभूविथ महान् वेग एजथुर्वेपथुष्टे।
महांस्त्वेन्द्रो रक्षत्यप्रमादम्।
सा नो भूमे प्र रोचय हिरण्यस्येव संदृशि मा नो द्विक्षत कश्चन॥१८॥

पदपाठ – **महत्। सधऽस्थम्। महती। बभूविथ। महान्। वेगः। एजथुः। वेपथुः। ते॥ महान्। त्वा। इन्द्रः। रक्षति। अप्रऽमादम्। सा। नः। भूमे। प्र। रोचय। हिरण्यस्यऽइव। सम्ऽदृशि। मा। नः। द्विक्षत। कः। चन॥१८॥**

अन्वय – (हे पृथिवि) महती (त्वं) महत् सधस्थं बभूविथ, ते महान् वेगः, एजथुः वेपथुः च। महान् इन्द्रः त्वा अप्रमादं रक्षति। हे भूमे सा (त्वं) संदृशि नः हिरण्यस्येव प्र रोचयः, नः कश्चन मा द्विक्षत।

सरलार्थ – हे पृथ्वी तुम बहुत ही विस्तृत निवासस्थल हो, तेरा वेग महान है और तुम्हारा कम्पन भी महान है, और महान् इन्द्र अप्रमाद से तुम्हारी रक्षा करते है। इस प्रकार की हे पृथ्वी तुम ही हम में रुचि विषय उत्पन्न करो जैसे सुवर्ण रुचिकर होता है। कोई भी हमारे प्रति द्वेष नहीं करे।

व्याकरण

- **बभूविथ** – भू-धातु से लिट् मध्यमपुरुष एकवचन में।
- **एजथुः** – एज्-धातु से लिट् मध्यमपुरुषद्विवचन में।
- **वेपथुः** – विप्-धातु से लिट् मध्यमपुरुषद्विवचन में।
- **रक्षति** – रक्ष्-धातु से लिट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
- **रोचय** – रुच्-धातु से लोट् मध्यमपुरुष एकवचन में।

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः॥१९॥

पदपाठ – **अग्निः। भूम्याम्। ओषधीषु। अग्निम्। आपः। बिभ्रति। अग्निः। अश्मऽसु॥ अग्निः। अन्तः। पुरुषेषु। गोषु। अश्वेषु। अग्नयः॥१९॥**

अन्वय – भूम्याम् अग्निः, औषधीषु आपः अग्निं बिभ्रति, अग्निः अश्मसु पुरुषेषु अन्तः अग्नयः, गोषु अश्वेषु।

सरलार्थ – अग्नि भूमि में है, जल अग्नि को धारण करता है, पत्थरों में भी अग्नि है, मनुष्यों में भी जठराग्नि है। और गाये घोड़ो में भी अग्नि है।

अग्निर्दिव आ तपत्यग्नेर्देवस्योर्व१न्तरिक्षम्।
अग्निं मर्तास इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम्॥२०॥

पदपाठ – **अग्निः। दिवः। आ। तपति। अग्नेः। देवस्य। उरु। अन्तरिक्षम्। अग्निम्। मर्तासः। इन्धते। हव्यऽवाहम्। घृतऽप्रियम्॥२०॥**

अन्वय – अग्निः दिवः आतपति, देवस्य अग्नेः उरु अन्तरिक्षम् अन्तरिक्षं मर्तासः अग्निम् इन्धते हव्यवाहं घृतप्रियम्।

सरलार्थ – सूर्यदेव स्वर्ग में तपते हैं। यह विशाल अन्तरिक्ष मण्डल अग्नि ही है, मरणशील प्राणियों को अग्नि में ही जलाते हैं।

व्याकरण

- **आतपति** – आङ् इस उपसर्गपूर्वक तप्-धातु से लट्लकार का रूप है।
- **उरु** – प्रचुर अर्थ में वेद में उरु शब्द का प्रयोग होता है।
- **इन्धते** – इन्ध-धातु से लट्-लकार का प्रथम पुरुष एकवचन का रूप है।
- **हव्यवाहम्** – हव्यं वहति यः स इति हव्यवाहः, तम् इति उपपदतत्पुरुष है।

पाठगत प्रश्न 25.2

1. स्योनम् इसका क्या अर्थ है?
2. जि-धातु से क्तप्रत्यय करने पर क्या रूप बनता है?
3. भूमि क्या है?
4. मैं पृथ्वी का क्या हूँ?
5. तन्वते यह रूप किस धातु का है?
6. धेहि यह किस लकार में है?
7. एजतुः यह रूप कैसे सिद्ध हुआ?
8. वेपथुः यह रूप किस धातु का है?
9. अग्नि कहाँ-कहाँ पर है?
10. रोचय यह रूप किस लकार में है?

25.3 पृथ्वी सूक्त का महात्म्य

वैदिक ऋषियों के मन में हमेशा परमतत्त्व ही प्रकट होते हैं, वहाँ उनका रमण नहीं होता था। उनके मन में भी अलौकिकसौन्दर्यभावना और नैसर्गिकप्रीति विद्यमान रहती है। जो या: प्रीतिभावना उनको रस-भावमय विषयों में प्रेरित करती है। उस प्रकार का सौन्दर्यसंस्कृतभाव का वर्णन अथर्ववेद के भूमिसूक्त में है। अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त केवल वैदिक ऋषियों के प्रगाढ़ ज्ञान का निदर्शन ही नहीं कर रहा है अपितु सौन्दर्य भावना का और सहृदयता का चरम निदर्शन करता है।

यह सुक्त अथर्ववेद के द्वादश काण्ड के अन्तर्गत आता है। इस प्रकार की भाव सौन्दर्य समृद्ध रचना वैदिक साहित्य में दुर्लभ है। यहाँ ऋषि अथर्वा उसके पृथ्वी विषयकहृदय में आये प्रेमभाव को प्रदर्शित करता है।

हमारी पृथ्वी माता अनेक रूप वाली हैं। वह ही हमारे लिए दीर्घ काल से परिचित मूर्ति है। उसके साथ हमारा लगाव नाड़ी के समान है। उसकी ही गोद में हमारा यहाँ जन्म और मृत्यु होती है। इसलिए उसकी देवता रूप से वैदिक ऋषियों के द्वारा कल्पना की। उसकी महिमा का वर्णन करने के लिए वैदिक कवि धैर्य सीमा का अतिक्रमण करते हैं। भूमि माता के साथ द्युलोक की प्रार्थना में भी ऋषि रत है, क्योंकि द्युलोक हमारे पिता के तुल्य है। और उनकी पत्नी रूप में ही पृथ्वी ऐसी भावना ऋषियों के सूक्ष्मबुद्धि में दिखाई दी। और ऋग्वेद में कहा गया –

'द्यौः पितः पृथिवि मातरध्रुग् अग्ने भ्रातर्वसवो मृलत नः।' इति। (ऋ.६.५१.५)

द्युलोक और पृथ्वीलोक को माता-पिता के रूप में वैदिक कवि देखते हैं। उन दोनों के मिलने से ही सृष्टि होती है। उन दोनों के मध्य में अविनाभाव सम्बन्ध है जैसे पार्वती परमेश्वर के मध्य में है। उसी अविनाभाव सम्बन्ध की कल्पना करते हुए उन दोनों की स्वामी और स्त्री रूप में कल्पना की गई है। अनन्तकाल से ही यह विद्यमान है।

जैसा वेद में कहा गया – **'ध्रुवा द्यौः ध्रुवा पृथिवी।'** इति।

उन दोनों का अलग से अस्तित्व नहीं है, क्योंकि दोनों जुड़े हुए है। इसलिए ही द्युलोक का अलग मन्त्रों के द्वारा स्तुति नहीं की। पृथ्वी माता की एक ही सूक्त में तीन ऋग्मन्त्र के द्वारा स्तुति की गई है। परन्तु उनकी स्तुति पृथक् रूप से नहीं की यह हेतु भी वैदिक ऋषियों का उनकी स्तुति में उदासीन थे ऐसा भी नहीं सोचना चाहिए। वे प्रसिद्ध देवता वन्दना के साथ ही मन्त्रों के साथ भी पृथ्वी आदि देवों की स्तुति की है।

उनकी दृष्टि में पृथ्वी विस्तृत है, विशाल, जगत को सुख देने वाली, घृतवती, पयस्वती और यज्ञवती है। वे पृथ्वी की मातृरूप से वर्णन करने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं। मनुष्यों की जीवनदशा में और मरणदशा में एकमात्र आश्रय पृथ्वी प्राणियों के माता स्वरूप हैं। वैदिकऋषि इस पृथ्वी को माता रूप से पूजते हैं।

ऋग्वेद के ऋषियों का पृथ्वी विषय पर जो भावना बीजरूप से दिखाई देती है उसी बीज का अङ्कुर उद्गम अथर्ववेद का पृथ्वी सूक्त में हुआ। यहाँ पर ६३ मन्त्र है। जिनमें दार्शनिक भावना

का प्रवाह दिखाई देता है। केवल दार्शनिक भावना का ही नहीं अपितु उन दोनों के सम्मिलित प्रकृति प्रेम भावना का भी अच्छी प्रकार से अङ्कुरोद्गम यहाँ हुआ। ऋषि अथर्वण ने देखा की पृथ्वी महिमामयी भूत और भविष्यत् काल को नियन्त्रण करती है। सत्य, बृहत्, ऋत, दीक्षा, उग्रतप, ब्रह्म और यज्ञ उसको धारण करती हैं। पृथ्वी सूक्त में कहा गया –

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ती॥ इति। (अ.वे.१२.१.१)

विचित्र रूपवाली हमारी पृथ्वी माता है। उसका कहीं पर समतल और कही पर बन्धुर भूमि है। यहाँ नदी–पर्वत–समुद्र–उर्वरभूमि और विचित्रधर्मी प्राणि विद्यमान है। फलप्रदान करने वाले औषधी वृक्ष का वह ही आधाररूप है। हमारे प्राणों को वह वक्ष में धारण करती है। पृथ्वी सूक्त में कहा गया – **'या बिभर्ति बहुधा प्राणद् एजत्'**। इति।

सृष्टि के आदि से ही वह विश्वम्भरा और विश्वधात्री है। वह विश्वम्भरा वसुधा के रूप में प्रतिष्ठ है। उसका सुवर्णमय वक्ष देश सभी जगत का आश्रय है। उसके गर्भ में उत्पन्न दो पैर और चार पैर वाले सभी प्राणी वहीं पर ही विचरण करते हैं। पृथ्वी सूक्त में कहा गया है –

'तज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः।' इति। उसका हृदय परमव्योम सत्य से ढका हुआ है। और भी – **''यस्यां हृदयं परमे व्योमन् सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः''**। इति। देवगण द्वारा सेवित वह पवित्र यज्ञ कर्म के वेदितुल्य के समान है। वहाँ हवि आहूति के लिए देव मनुष्यों के मिलन क्षेत्र की रचना करते हैं।

विश्व को धारण करने वाली पृथ्वी माता सभी देवगण की पूज्य हैं। अश्विनी कुमार उसके परम वैद्य है। वहाँ विष्णु ने स्वयं अपने दो पैरों को स्थापित किया। वीर श्रेष्ठ इन्द्र जिसकी रक्षा के लिए हमेशा नियुक्त होते हैं। उसके दुग्ध सेवन से विश्व में प्राणि शक्ति से सम्पन्न होते हैं।

अनंत काल से ही वह प्राणियों को उत्पन्न और धारण करने वाली हैं पर वह भंयकर कठोर और कहीं पर वह क्षमामयी अन्नदात्री हैं, पयस्वती, शान्तिरूप वाली और सुगन्धा हैं। पर्जन्यदेव यहाँ हमेशा वर्षा करते हैं। इसलिए वह कवि कल्पना में पृथ्वी के पति हैं। मनुष्य श्रद्धा के द्वारा देवों को उद्दिश्य करके यहाँ पर ही हवि प्रदा करते है। पृथ्वी सूक्त में –

भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यं अरंकृतम् (२.१.२२) इति। इसकी मिट्टी की गन्ध से मुग्ध कवि सभी का सभी समय के लिए मङ्गल की प्रार्थना इस मन्त्र के द्वारा करते है – 'तेन मा सुरभिं कृणु मा नो द्विक्षत कश्चन'॥ इति।

इस पृथ्वी के वक्ष में उत्पन्न होने वाला अघात प्रेम को कवि वर्णन करने में असमर्थ है। कभी भूमि का खनन करते है तो भी वह क्षति को शीघ्र ही पूर्ण कर दे ऐसी कवि प्रार्थना करते है। पृथ्वी सूक्त में –

'यत् ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
मा ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदयम् अर्पिषम्'॥ (अ.वे.१२.१.६३) इति।

टिप्पणियाँ

दुष्ट और सज्जन दोनों उसी की गोद में ही आश्रय लेते है। पृथ्वी माता का आश्रयधन्य कवि प्रार्थना करता है की हे स्वर्ग सखी पृथ्वी तुम हमारी आश्रयदात्री हो, तुम सम्पदा और श्रिय से पूर्ण होकर हमारा पोषण करो। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में –

'सं विदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम्'। इति॥ (अ.वे.१२.१.६३) इति शम्।

25.4 पृथ्वी स्वरूप

भारतीय परम्परा में अचेतन वस्तुओं का भी अधिष्ठाता देवता को स्वीकार किया गया है। द्युलोक जैसे देवों का वैसे ही पृथ्वी लोक स्थानि मनुष्यों का एवं जीवों का भी निवास स्थान है। यह तो अचेतन है परन्तु इसका अधिष्ठाता देवता के साथ संयुक्त और नियमित हैं। इसलिए वैदिक साहित्य में इसकी बहुत ही सुंदर वन्दना प्राप्त होती है।

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी के महत्त्व का वर्णन किया गया है। उत्पति से पहले यह समुद्र में डूबी हुई थी। विद्वान अपने पराक्रम से इसका वर्णन करते हैं। इसका कुछ क्षेत्र जल से परिपूर्ण और कुछ क्षेत्र स्थल है। इस भूमि में विचित्रता भी दिखाई देती है। यहाँ जलधार अपने प्राणीकुल को आनन्दित और सरस स्वावलम्बी बनाते हुए प्रवाहित होते हैं। इसके प्रभाव से मनुष्य यश, धन और आधिपत्य को प्राप्त होते हैं। वैसे ही वेद में कहा गया –

ते नो गृणानो महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत्।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समन्वितम्॥ इति।

माता जैसे अपने पुत्र को दूध पिलाती है और उससे उसकी वृद्धि होती है वैसे ही पृथ्वी भी सभी को अमृतसमान जल पिलाती है और उनका अच्छी प्रकार से पालन करती है। माता जैसे अपने पुत्रों में भेद नहीं करती है, सभी को समानरूप से स्नेह करती हैं इसी प्रकार पृथ्वी भी साधु असाधु विचार को छोड़कर सभी का अन्नधन आदि से पालन करती है। उस पृथ्वी का मातृत्व सभी जगह वेदमन्त्र आदि में प्रसिद्ध है। द्यावा पृथ्वी के वर्णन अवसर समय में भी इसके मातृरूप स्फुटित होता है। वेद में कहा गया –

उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः।
सुधृष्टमे वपुषे न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत्॥ इति।

ऋग्वेद के द्यावा पृथ्वीसूक्त में कहा जाता है की जो इस जगत स्थिति का सम्पादन कर तथा जगत चक्र का विरामहीन और गति का विधान करके जगत का मातृरूप से आत्मा को प्रकट किया। वहाँ वेद में कहा गया –

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी।
सुजन्मनो धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः॥ इति।

इस प्रकार जगत मातृरूप से, धात्रीरूप से और पालयित्रीरूप से अनेक प्रकार की स्तुति करते हैं।।

पाठ का सार

अथर्व वेद संहिता के द्वादश काण्ड का प्रथम सूक्त का भूमि अथवा पृथ्वी देवता है। अथर्वा ऋषि। इस सूक्त में पृथ्वी अथवा भूमि का वैशिष्ट्य विस्तार से बताया गया है। ऋषि अथर्वा कहते है की सत्य, बृहत्, ऋत, उग्र, दीक्षा, तप, यज्ञ, और ब्रह्म पृथ्वी को धारण करते है। यह भूमि मनुष्यों के मध्य में असम्बाध है। इसका कही पर पहाड़ी तो कही पर ढलान और कहीं पर सम प्रदेश हैं। यह ही अनेक प्रकार की शक्तिशाली औषधी का भरण करती है। पृथ्वी में ही समुद्र सिन्धु और जल प्रवाहित होता है। पृथ्वी पर ही सभी जड़जंगम आनन्दित होते है। इस पृथ्वी के चार दिशायें हैं। इस प्रकार यह विश्वंभरा, वसुधानी, प्रतिष्ठा, हिरण्यवक्षा, जगत का निवास स्थान, इन्द्रऋषभा भूमि वैश्वानर अग्नि का भरण पोषण और हमे धन दो। जो पृथ्वी प्रलय अवस्था में सृष्टि पहले जल मग्न थी। मनस्वी जिस पृथ्वी को समझकर उसके अनुसार आचरण करते है। जो पृथ्वी सत्य से ढ़की हुई अमृत को हृदय में धारण किया हुआ है। जिस पृथ्वी की परिचरा समान रूप से सार्वभौमिक जल और दिन-रात प्रमाद रहित होकर नियम के अनुसार चलते है, वह भूमि धारा भूमि हमारे लिए पय आदि तेज के द्वारा अभिसेचन करें। वह माता भूमि अपने पुत्र के लिए पय को छोडती हैं। भूमि माता मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ - माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।

पाठांत प्रश्न

1. पृथ्वी सूक्त का सार लिखो।
2. पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी का कैसे वर्णन है प्रतिपादित करो।
3. पृथ्वी सूक्त में अग्नि का अग्नि स्वरूप वर्णन करो, सूक्त सहित प्रतिपादित करो।
4. सत्यं बृहद्ऋतमुग्रम् ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
5. गिरयस्ते पर्वताः ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
6. यस्यां वेदि ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
7. यत् ते मध्यम् ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
8. महांस्त्वेन्द्रो ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
9. त्वज्जाता ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।
10. यस्याश्चतस्रः ... इस मन्त्र की व्याख्या करो।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

25.1

1. अथर्वा ऋषि, अग्नि और पृथ्वी देवता।

2. सत्य, बृहत्, ऋतम्, उग्र, दीक्षा, तप,और यज्ञ।
3. अनेक शक्तिसम्पन्न ओषधिवृक्षो को।
4. ऋ-धातु से क्तप्रत्यय करने पर।
5. चार।
6. जिन्द्-धातु से लट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
7. जिस पृथ्वी पर पूर्वजो ने विविधकर्म किये, जिस पृथ्वी पर देवों ने असुरों को पराजीत किया, जो पृथ्वी गाय आदि अनेक विचित्र प्राणियों का आश्रय स्थान है।
8. विश्व का भरणपोषण करने वाली।
9. धन को धारण करने वाली।
10. हिरण्यं वक्षे यस्याः सा इति बहुव्रीहि समास।
11. इन्द्रः ऋषभः यस्याः सा इति बहुव्रीहि समास।
12. स्वप्न से विहीन।
13. लोट्।
14. उक्ष्-धातु से लोट् प्रथमपुरुष एकवचन में।
15. इन्द्र।

25.2

1. कल्याणकारी।
2. जीतः।
3. माता।
4. पुत्र।
5. तन् धातु से।
6. लोट्।
7. एज्-धातु से लिट् मध्यमपुरुषद्विवचन में।
8. विप्-धातु से।
9. भूमि में, पत्थर में, पुरुष में जठराग्निरूप से।
10. लोट्।

॥ पच्चीसवाँ पाठ समाप्त ॥